रेलवे-स्टेशन का दृश्य

Railway Station ka Drishya

अपने बड़े-बूढों से कई बार सुना है कि एक जमाना था, जब भारत की रेले लगभग खाली दौड़ा करती थीं। एक डिब्बे में दो-चार यात्री हुआ करते थे। तब यात्रा करने वाले। अक्सर ऐसे डिब्बे में बैठना पसन्द करते थे, जहाँ पहले से चार-छः यात्री अवश्य मौजूद हों। इस कारण भी कई डिब्बे एकदम खाली रह जाया करते थे। डिब्बों के अन्दर की इस हालत से अनुमान लगाया जा सकता है कि तब किसी बड़े-से-बड़े रेलवे स्टेशन और उसके प्लेटफार्मों पर लोगों की भीड़ या संख्या कुल कितनी रहा करती होगी?

इस सबके विपरीत जब हम आज के रेल के डिब्बों को यार्ड से ही मुसाफिरों से भर कर आते हुए देखते हैं, बड़े-बड़े क्या छोटे-से-छोटे स्टेशन के मुसाफिर खड़े, टिकट-खिड़की और प्लेटफार्म का दृश्य देखते हैं, तो विश्वास नहीं हो पाता कि बड़े-बुजुर्गों द्वारा ऊपरिवर्णित दृश्य सत्य भी हो सकता है। आज के रेलवे स्टेशन पर उमड़ी भीड़ को देख कर तो अक्सर यह अहसास होने लगता है कि इस महानगर में एक भी आदमी पीछे रहने वाला नहीं है। सभी को आज ही, इस एक ही ट्रेन से कहीं अवश्य जाना है। तभी तो पूरा महानगर अपने काम-काज, घर-बाहर आदि सभी कुछ छोड़ कर यहाँ उमड आया है। हाँ सच, आज के रेलवे स्टेशनों का दृश्य देख कर कुछ इसी तरह का अहसास हुआ करता है।

उस दिन मुझे बाहर से आने वाले अपने एक रिश्तेदार-परिवार को लेने के लिए स्टेशन जाने का अवसर मिला। स्टेशन के बाहर ही भीतर जाने वाले स्कूटरों, कारों-टैक्सियों की आगे बढ़ने के लिए बेचैन हार्न-पर-हार्न बजाकर ध्वनि-प्रदूषण उत्पन्न करने वाली भीड़ को देखकर दंग रह गया; क्योंकि मैं बस से आया था और ट्रैफिक जाम होने के कारण स्टेशन से कुछ उधर ही उतर गया था, सो किनारे-किनारे कभी तिरछ चलते हुए किसी प्रकार स्टेशन के आँगन में पहुंच पाया। वहाँ पर आदमियों की गहमा गहमी देखकर तो मेरे होश ही उड़ने लगे। जैसे किसी देहात में पहुँच कर एक सिरे से दूर तक देखने पर सिवा समय स्तर पर उगी फसल के जमीन कहीं नजर तक नहीं आया भी उसी तरह स्टेशन पर भी भीतर-बाहर सभी जगह आदमियों के सिर-ही-सिर जर आ रहे थे। वहाँ का फर्श कतई दिखाई नहीं पड़

रहा था। सोच में पड़ गया कि जमीन पर पाँव रखकर मैं प्लेटफार्म-टिकट खरीदने के लिए टिकट-खिडकी तक इंच पाऊँगा? फिर टिकट लेकर किस रास्ते से चलकर प्लेटफार्म तक जाकर गाड़ी जाने पर अपने रिश्तेदारों को ट्रेन से उतार कर घर ले जा पाऊँगा ? यहाँ तो या तो सिर-ही-सिर दीख पड़ रहे हैं या फिर सामान के ढेर लग रहे हैं। सोचने लगा, आखिर एक समय ही सारे लोग अपने घरों से यात्रा के लिए क्यों और कैसे निकल पड़ते हैं? वह भी इतना भारी भरकम सामान लाद कर-आश्चर्य!

खैर, बड़ी मुश्किल से आगे तिल-तिल आगे सरकते हुए मैं टिकट-खिड़की के करीब पहुँचा । देखा, कुछ चुस्त-चालाक लोग दूसरों की आँख बचाकर या तो दूर तक लगी लाइन में घुसपैठ कर रहे हैं या फिर अपनी टिकट के पैसों को आगे खड़ों के हाथों में थमाने की कोशिश में उनकी मिन्नत-चिरौरी कर रहे हैं। पीछे से लोग इन्हें रोकने-टोकने और चुनौती देने की कोशिश कर रहे हैं; पर उन बेशर्म लोगों पर इस सब का जरा भी प्रभाव नहीं पड़ रहा। मुझे भी एक-दो ने पैसे पकड़ाने की कोशिश की, मगर पिछलों की ललकार से डर कर मैं वैसा करने का साहस न जुटा पाया। जो हो, कुछ देर बाद मेरा नम्बर आया और प्लेटफार्म टिकट लेकर अब मैंने वहाँ से चल आवश्यक प्लेटफार्म तक पहुँच पाने के लिए संघर्ष आरम्भ कर दिया। ऐसा करते हुए कई बार सामान उठा कर आगे-आगे भाग रहे कलियों और सामान के यात्रियों से टकरा कर गिरते-गिरते बचा। जो हो प्लेटफार्म सामने आ जाने पर मैंने अपने को उस संघर्ष में सफल होते हुए अनुभव किया।

लेकिन यह क्या? यह मैं किसी स्टेशन के प्लेटफार्म पर आ पहुँचा हूँ कि आदमियों के उफनते हुए गहरे समुद्र में, कई क्षणों तक निश्चय कर वहीं खड़ा और इधर-उधर से धकिया कर आगे बढ़ रहे लोगों के धक्के खाता रहा। वहाँ यात्रियों की भीड़ से भी बढ़ कर शायद उन्हें पहुँचाने आए लोगों की भीड़ थी। उस पर गाड़ी भी प्रतीक्षा करते गेरुआ कमीजों वाले कुलियों की कतारें, सामान लादने को उतवाले हाथ ठेले, ऊँची आवाजें लगा कर अपना सारा सामान एक ही हल्ले में बेच डालने को उत्सुक खोमचे वाले, पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तके बेचने वाले, घात लगाए घूमते उठाईगीर और पुलिस वाले, हाथ फैला कर दया उभारने की कोशिश करते भिखारी, काशी-हरिद्वार की यात्रा के लिए दान के लिए हाथ फैलाते साधु और साथ ही दो-चार आवारा पशु आदि सभी मिल कर डा ही वीभत्स दृश्य जास्थित कर रहे थे। जैसे सागर में उठती लहरों द्वारा बीच खड़ा व्यक्ति या छोटी नाव आदि उनके प्रवाह से बार-

बार ठेले जाते हैं, उसी प्रकार बार-बार भीड़ से ठेला जाकर मैं भी विवश-व्याकुल-सा खड़ा देखता रहा।

तभी 'आ गई..... गाड़ी आ गई' का शोर तो सुनाई दिया ही, लोगों की हलचल ने बढ़ कर उस शोर को और भी कनफोड बना दिया। जैसे ही दूर से इंजिन का हार्न स्वर सुन पड़ा, बाद में उस की शक्ल दिखाई दी, वह अफरा-तफरी मची कि बस पछिए। नहीं। मैं ठेला जाकर उसी तरह एक ओर फेंक दिया गया, जैसे सागर की लहरें कोई मछली आदि उछाल कर फेंक देती हैं। जब तक सम्भल पाया, ट्रेन प्लेटफार्म पर पहुँच चुकी थी। चढ़ने-उतरने वालों में धक्का-मुक्की भी शुरू हो चुकी थी। मैं बदहवास-सा आने वाले रिश्तेदारों की खोज में इधर-से-उधर भागने लगा; पर विशाल सागर से सूई को कभी खोज-निकाला जा सकता है क्या ? नहीं न, सो मैं भी आने वालों को न पा कर उदास-निराश, किसी प्रकार बचता-बचाता स्टेशन से बाहर निकल बस-स्टैण्ड की ओर चल पड़ा। जाते हुए देखा, मेरे रिश्तेदार एक टैक्सी पर अपना सामान लाद रहे थे। मैंने राहत की साँस ली और उनके पास पहुँच नमस्कार-प्रणाम आदि करने लगा।